छायावादी कवियों का आत्म–प्रसार

अजय कुमार तिवारी

अध्यापक, जवाहर नवोदय विद्यालय
पश्चिम सिंयांग (अरूणाचल प्रदेश)

छायावादी कवियों ने जो आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा प्रकट की वह वस्तुतः आत्म प्रसार की आकांक्षा थी। इनके द्वारा दुःख–वेदना जो भी स्वनुभूतियाँ व्यक्त की गयी उन पर यदि हम व्यापकता से विचार करें तो उसमें लोक कल्याण का पूर्ण समावेश मिलता है, उनका दृष्टिकोंण समाज में व्याप्त विषमताओं की तरफ भी जाता है, जिसे दूर करने के लिए कहीं न कहीं ये अपनी अभिव्यक्ति को प्रसारित करते हैं।

यद्यपि एक सामान्य मानव को दुःख वेदना पीड़ा और व्यथा जैसी मनोदशाएँ वांछनीय नहीं लगती। मानव में दुःख की अपेक्षा सुख, विशाद की अपेक्षा हर्ष और अश्रु की अपेक्षा ह्रास के प्रति एक सहज वांछा होती है।

छायावादी कवियो नें इस सामान्य जीवन दृष्टि और सहज मानवाकांक्षा से अलग हटकर जीवन में वेदना और दुःख के महत्व पर पुनर्चिंतन करते हुए उसे नवीन रूप में मूल्यांकित और गौरवान्वित किया है। इसी दुःख और वेदना के पीछे एक मर्मसूत्र भी तो है जिसके अन्तर्गत सहानुभूति, समानुभूति, संवेदना और मानसिक साहचर्य है।

आत्म–प्रसार की इस आकांक्षा में कवि प्रथमतः प्राचीन रूढियों को तोड़ते हुए आत्म–प्रसार व्यक्त करते हैं। 'पंचवटी प्रसंग में निराला के राम सीता को आत्म प्रसार का उपदेश देते हुए पारिवारिक सीमाओं की ओर संकेत करते हैं–

छोटे से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं छुद्र भाव
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोनिधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।[1]

छायावादी कवियों ने प्रेम के जिस रूप को व्यक्त किया उसमें उदात्त भाव को प्रतिष्ठित किया गया है और यदि हम देखें तो छायावाद के परवर्ती कालों में प्रेम के अत्यन्त संकीर्ण भावों को व्यक्त किया गया है। चाहे वह आदिकाल हो या रीतिकाल हो या आधुनिक काल हो। छायावादी प्रेम की उदात्तता की तुलना में आदिकालीन प्रेम स्थूलतः कायिक, आंगिक और वाह्य रहा है। भक्तिकाल के प्रेम में लौकिकता के समुचित समाहार की अपेक्षा है। रीतिकाल के कवियों का सारा–का–सारा प्रेम रसिकजनों के विलासग्रहों और कमचर्याओं

Scanned with CamScanner

तक ही संकीर्ण रह गया और वह एक बैठे–ठाले की वस्तु बन गया। यदि भारतेन्दुयुगीन कवियो के प्रेमसौन्दर्यानुभूति को देखा जाय तो समर्थ कवियो की प्रतिभाशक्ति के बावजूद भी रीतिकाल, भक्तिकाल के परस्पर विरोधी और एकांगी छोरों के बीच चक्कर काटती रही। यद्यपि भारतेन्दु युग के अन्त और द्विवेदी युग के आरम्भ में यत्र–तत्र विस्तार के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। 'श्रीधर पाठक' जैसे कवि ने प्रकृति के क्षेत्र में इसे कुछ अंशों में विस्तृत किया। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो छायावादी कवियों की चेतना अधिक विस्तृत सजीव और उदान्त बनकर सामने आयी।

''आत्म प्रसार की भावना ने केवल परिवार की चहार दिवारी पर ही प्रहार नहीं किया, वस्तुतः अपने जीवन के सभी पक्षों में संकीर्णता का विरोध किया।''[2]

जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सम्पूर्ण सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है और दीपक स्वयं जलकर राख हो जाता है परन्तु चारो तरफ आलोक पहुचाता है। उसी प्रकार महादेवी वर्मा स्वयं साधना के आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती हैं।

निराला की आत्माभिव्यक्ति उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है जब वे लिखते हैं–

मैंने मैं शैली अपनाई
देखा एक दुःखी जन भाई

उस समय ये मैं शैली ही नहीं अपितु मैं की पूर्णतः अभिव्यक्ति भी करते हैं अपने दुःख सुख को उन्होंने जिस रूप में व्यक्त किया है वह पाठक के साथ पूर्णतः आत्मीय हो जाती है। इनकी अभिव्यक्ति लोगों के संवेदनाओं से जुड़कर प्रसारित होती है। विराट के उपासक 'महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' ने अपनी रचना तुलसीदास में 'गोस्वामी तुलसीदास' के माध्यम से भारतीय परम्परा के गौरवशाली मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किये हैं। जिसके लिये इन्होनें लोक प्रचलित उस कथा को आधार बनाया है जब तुलसीदास पत्नी रत्नावली से मिलने उनके मायके पहुँच जाते हैं और रत्नावली की फटकार से रामोपासना में लीन हुए फिर वे घूमते हुए चित्रकूट पहुँचते हैं, वहां प्रकृति की निर्मल शोभा, परिचित रूप को देखकर उनका हृदय उन्मुक्त आकाश में उड़ने के लिए स्वतंत्र हो जाता है–

''वह उस शाखा का वन–विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग–पर–रंग, रंग पर जीवन।''[3]

यहाँ पर तुलसीदास की यह उन्मुक्त उड़ान आत्म प्रसार का प्रतीक है। रत्नावली की फटकार से तुलसीदास की चेतना मुक्त होती है और संकुचित भावों से निकल कर ऊपर की तरफ प्रसारित होती है। कवि ने व्यक्तिगत सुख और जीवन के महान एंव व्यापक मूल्यों के बीच संघर्ष दिखलाकर अन्त में उदान्त मूल्यों की विजय दिखाई है।''[4]

Scanned with CamScanner

निराला के तुलसीदास की हर तरह उनकी राम की शक्तिपूजा के राम भी रणक्षेत्र में रावण से पराजित होकर विराट आकाश में उठते हैं और वहां देखते हैं कि 'शक्ति' 'रावण' को लांक्षन की तरह अंक (गोद) में धारण किये रक्षा कर रही हैं। यद्यपि राम धर्म के प्रतीक हैं और रावण अधर्म के, अधर्म का चित्रण इस कविता में एक प्रचण्ड शक्ति के रूप में हुआ है जिसके सामने एक बार तो राम का साहस भी कुंठित होने लगता है। यह स्थिति एक ओर तो कवि के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित है, जिसका चित्रण स्वयं कवि सरोजस्मृति में करते हैं–

''धन्ये! मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।''

और यही स्थिति इस समय भी होती है–

''धिक जीवन को पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।''

अन्ततः 'श्री राम' शक्ति की मौलिक कल्पना करते हैं और उपासना करते हैं।

''वे गरजते हुए समुद्र की पीठिका पर खड़े लता–गुल्मों से ढके गिरिशिखर को सिंह स्थिति–शक्ति का स्वरूप मान लेते हैं और फिर शक्ति के इस भाव कल्पित' विराट रूप की उपासना में लग जाते है।''[5]

निराला इस विराट कल्पना में ही समस्या का असली समाधान मिलता है। जहाँ एक तरफ निराला जी विवेकानन्द जी की कविता–'नाचुक ताहाते श्यामा' का अनुवाद करके अपने हृदयगत भावों को प्रकट करते हैं वहीं दूसरी तरफ कवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपनी भावना अज्ञात की लालसा के रूप में व्यक्त करते हैं। पंत जी की अनेक कविताओं में प्रकृति प्रेम और आदर्शवादिता सम्बद्ध रूप में स्पष्ट है। वीड़ा कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

''कुमुद कला बन कल हासिनी
अमृत प्रकाशिनी, नभ निवासिनी
तेरी आभा को पाकर माँ
जग का तिमिर त्रास हर दूँ
नीरव रजनी में निर्भय।''[6]

यहां पर कवि ने प्रकृति से चांदनी को प्राप्त करके जगत में तिमिर त्रास को दूर करने की आकांक्षा व्यक्त की है। पंत जी ने समाजवाद की तरफ एवं गांधीवाद की तरफ समान रूप से रूचि दिखाई है। लोक व्यवस्था के लिए उन्हें समाजवाद की बातें पसंद है और व्यक्तिगत साधना के लिये गांधीवाद की बातें। जहां कहीं भी वह लोक व्यवस्था से जुड़ते हैं वहां–वहां वह लोक कर्म में प्रवृत्ति नहीं तो कम से कम कर्मक्षेत्र में उतरे हुए लोगों के समूह में चलते हैं। उन समूहों में चलते हुए श्रमजीवियों को–'लोक क्रान्ति का अग्रदूत और नव्य सभ्यता उन्नायक बताते हैं। समाजवाद की बातें कविनें ग्रहण किया है पर अपना

Scanned with CamScanner

चिन्तन स्वतंत्र रखा है। 'समाजवाद' एवं संघवाद (कम्युनिज्म)के साथ लगा हुआ सकीर्ण भौतिकवाद उसे इष्ट नहीं।''[7]

जयशंकर प्रसाद जी अपनी कविताओं में अन्तर्मुखी कल्पना द्वारा आत्म विस्तार का प्रयास किये हैं। आँसू का आरम्भ कवि की विरह–वेदना अभिव्यक्ति से हुआ है–

इस वरूणा कलित हृदय में
अव विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।

इसके अन्त में एक छन्द दिया गया है–

''सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
वरसो प्रभात हिमकन–सा
आँसू इस विश्व–सदन में।''[8]

यहाँ पर कवि अपने व्यक्तिगत वेदना की अभिव्यक्ति को प्रसारित करते हुए विश्व कल्याण की भावना से जोड़ देते हैं। आँसू प्रसाद जी का एक स्मृति काव्य है, जिसमें कवि ने वेदना भरी अतीत की स्मृतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही कारण है कि इनके इस काव्य में मात्र इनकी अनुभूतियाँ सीमित नहीं रह गयी अपितु अपने व्यक्तिगत निराशा एवं दुःख से ऊपर उठकर वेदना को करूणा के रूप में, विश्व प्रेम के रूप में प्रसारित करते हैं।

''आँसू में प्रसाद की अनुभूति व्यक्तिगत निराशा के गर्त से निकलकर विश्व–वेदना के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए आकुल हो उठती है।''[9]

प्रगल्लभता और विचित्रता के भीतर प्रेम वेदना के दिव्य विभूति का, विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का सुख–दुःख दोनो का अपनाने की अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौन्दर्य और मंगल का भी आभास पाया गया। इस प्रकार इन सबका समावेश आँसू से लेकर कामायनी तक हुआ है।

कमायनी प्रसाद जी की अन्तिम रचना है जिसमें प्रसाद जी ने एक विशाल भावना को स्थापित किया है। कामायनी में प्रसाद जी ने जीवन के अनेक पक्षों को समन्वित किया है और मानव जीवन के लिए एक व्यापक आदर्श–व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया है। प्रसाद जी ने मनु, श्रद्धा, इड़ा जैसे पात्रों के चरित्रांकन में मनुष्य की अनुभूतियों, कामनाओं और आकांक्षाओं का वर्णन किया है। यह कामायनी में चेतना का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। कामायनी में प्रसाद जी ने बुद्धिवाद के विरोध में हृदय तत्व की प्रतिष्ठा करते हैं।

आनन्दवाद को प्रतिष्ठित करते हुए 'काम को मंगल से मंडित श्रेय' स्वीकार करते हुए श्रद्धा की प्रेरणा से मनु को कामना के बन्धनों से ऊपर उठकर सामरस्य के आनन्द की प्राप्ति में तत्पर दिखाया है।

Scanned with CamScanner

सारस्वत प्रदेश का वर्णन करते हुए 'यान्त्राश्रित सभ्यता' के वर्णन में अपनी समकालीन सामाजिक व्यवस्था की विषमता का चित्रण भी किया है। मानवता को ऊपर उठाते हुए श्रद्धा के माध्यम से कहलवाते हैं–

शक्ति के जो विद्युत कण, फैले है हो विकल निरूपाय
समन्वय उनका करे समस्त, विजायिनी मानवता हो जाय ।

अनेक विद्वानो का कहना है कि लोक मंगल की भावना को मुखरित करते हुए भी कामायनी की चेतना व्यक्तिवदी है जो अपने युग के समस्याओं का यथार्थ के धरातल पर समाधान करने में असमर्थ रही है।

''यदि मधुचर्या का अतिरेक और रहस्य की प्रवृत्ति बाधक न होती तो इस काव्य के भीतर मानवता की योजना शासद अधिक पूर्ण और सुव्यवस्थित रूप में चित्रित होती है।''[10]

वास्तव में देखा जाय तो समसज और व्यक्ति के स्तर पर जीवन की विकास की असीम सम्भावनाएं हैं। इन सीमाओं के बावजूद भी कामायनी में लोककल्याणकारी के रूप में मुखरित होता हुआ देख जा सकता है।

महादेवी वर्मा के आत्मप्रसार की सीमा समाज कल्याण की भावना से सम्पृक्त है। जब वे अपने जीवन की तुलना– नीर भरी दुःख की बदली या दीपशिखा से करती है तो वहां आध्यात्मिक साधना के साथ–साथ लोककल्याण की भावना भी विद्यमान रहती है। जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सम्पूर्ण सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है और दीपक स्वयं जलकर राख हो जाता है परन्तु चारो तरफ आलोक पहुचाता है। उसी प्रकार महादेवी वर्मा स्वयं साधना के आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती हैं।

दीप शिखा उनका प्रिय बिम्ब है जिसकी एक आध्यात्मिक उपयोगिता है यह आराधना का एक अनिवार्य उपकरण है और यही दीपक संसार के लिए प्रकाश फैलाता है जिसमें पथिक अपना मार्ग खोजता है।''[11]

महादेवी वर्मा जी ने जिस दुःखवाद अपनाया वह निराशा नहीं अपितु कल्याणकारी प्रसार है इनकी वेदना की तुलना प्रसाद जी के आँसू से की जा सकती है। आँसू काव्य के अन्त में जो करूणा की अनुभूति की जाती है वही अनुभूति महादेवी जी के वेदना में भी विद्यमान है।

महादेवी जी दुःख के भाव को संकुचित रूप में ग्रहण नहीं करती है, इन्होने यामा की भूमिका में स्वीकार किया है–

''दुःख मेंरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखता है, हमारे अंस रूप सुख हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सके किन्तु हमारा एक बूँद आँसू जीवन को अधिक मधुर, उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता''।

Scanned with CamScanner

महादेवी जी की वेदना प्रियता उनके समस्त काव्य में विद्यमान है। वे वेदना से शुरू करके वेदना में ही परिणति खोजती है। वे नहीं चाहती कि उनकी पीड़ा का साम्राज्य लुट जाय। चिर विरह भावना के कारण महादेवी जी की कविताओं में उनके हृदय की करूणा मूर्तित हो उठी है। करूणा से ओत प्रोत होने के कारण इनकी वेदना भी परिस्कृत एवं संस्कारित होकर अभिव्यक्ति हुई है ।

अपने इस प्रकार की अनुभूति को प्रसारित करती हुई वे कहती हैं–

''व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है, तो व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व''

महादेवी जी की अनुभूति केवल व्यक्तिपरक आध्यात्मिकता की अनुभूति नहीं है, उसमें लोककल्याण की भावना भी है जो अडिग आस्था और आत्म बलिदान के रूप में व्याप्त है।

महादेवी ने मध्यकालीन रहस्य भावना की परम्परा को स्वीकार करके उसे लोककल्याण के साथ संयुक्त करके अपने युग–बोध के अनुरूप ढालने की कोशिश की है।''[12]

इनका वेदना भाव निश्छल निष्कपट और पुनीत है विरह की यही सात्विकता इनकी कविताओं में विस्तारित होकर विश्व वेदना बन गई है।

अन्ततः स्पष्ट होता है कि छायावादी काव्य निराशावादी काव्य नहीं है वह मानव समाज के लिए कल्याण की कामना से अलंकृत है, इसलिए छायावादी कवियों की व्यक्तिगत निराशा ही करूणा और विश्व प्रेम का रूप ग्रहण कर लेती है। जहां पहुंचकर सारे कवियों ने सारे संसार की वेदना को खुद स्वीकार करके विश्व जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं और यही वह सीमा है जहां इनकी आत्माभिव्यक्ति, आत्म प्रसार का रूप धरण कर लेती है।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1–छायावादः नामवर सिंह पृश्ठ–24
2–वही पृश्ठ संख्या –25
3– वही पृश्ठ संख्या–31
4–हिन्दी सा0 का इतिहास, नागेन्द्र पृ0549
5–छायावादः नामवर सिंह पृ031
6–हि0सा0का0इ0 रामचन्द्र पृ0 551
7–हि0सा0का0इ0 रामचन्द्र षुक्ल पृ0 472
8–हि0सा0का0इ0 नगेन्द्र पृश्ठ–545
9–वही पृश्ठ सं0–546
10–हि0सा0का0इ0 रामचन्द्र षुक्ल पृश्ठ–460
11– हि0सा0का0इ0 नागेन्द्र पृश्ठ–554
12–वही पृश्ठ–554

Scanned with CamScanner